ISSN: 2278-4632
Vol-10 Issue-10 No.02 October 2020

तुलसीदास के काव्य की शिल्पगत विशेषताएँ

डॉ. राज रानी शर्मा ऐसोसिऐट प्रोफेसर सत्यवती महाविद्यालय

महाकवि तुलसीदास के काव्य को शिल्प–विधान को समझने से पूर्व इस बात को समझ लेना आवश्यक है कि तुलसी का काव्य–भाषा या शिल्प सम्बन्धी क्या दृष्टिकोण था? इस सम्बन्ध में डॉ. लक्ष्मीनारायण मिश्र का मत है– ''तुलसीदास के सामने दो प्रकार के भाषा प्रयोग की परम्परा थी एक संस्कृत की और दूसरी जनभाषा की। एक ओर देववाणी के रूप में प्रतिष्ठित अक्षय धार्मिक–लौकिक–साहित्य–सम्पन्न और कुमारिल भट्ट, शंकराचार्य से लेकर सामान्य पण्डित तथा सामंत वर्ग तक पूज्य संस्कृत की दीर्घ परम्परा थी और दूसरी ओर गौतमबुद्ध और महावीर सदृश लोकनायकों और सम्प्रदाय प्रवर्तकों द्वारा प्रयुक्त और प्रतिष्ठित तथा सहस्त्राधिक बौद्ध–सिद्धों, जैन–मुनियों, नाथ–योगियों, निर्गुणियों, संतो व अन्य भाषा कवियों द्वारा रचित विशाल साहित्य से सम्पन्न लोकभाषा की परम्परा थी।''[1] इन दोनों के अतिरिक्त फारसी की दरबारी काव्य परम्परा और लक्षण–ग्रंथों के निर्माण की प्रवृति भी बढ़ रही थी। देवभाषा संस्कृत के समर्थक सस्कृतेतर साहित्य को गँवारू घोषित कर रहे थे, जनभाषा में साहित्य लिखने वाले जन–जन तक साहित्य का रसास्वादन करवाना चाहते थे। दरबारी काव्य परम्परा में अत्युक्पिूर्ण प्रशास्ति और स्तुति चरम पर थी, लक्षण–ग्रन्थकार प्रदर्शन प्रवृत्ति के शिकार थे।

इन भाषा–चक्रों के मध्य तुलसी को अपना रास्ता चुनना था। उन्होंने दरबारी काव्य–परम्परा और लक्षण ग्रंथों को पूर्ण रूप से तिलांजलि देकर आधुनिक भारतीय भाषाओं के उत्थान के लिए, नवीन जातीयता की भावना के विकास के लिए 'भाषा काव्य' या 'जन भाषा' का चयन किया। उन्होंने पंडितों की सांस्कृतिक धारा का भी अंधानुकरण नहीं किया। ''उन पर एक ओर संस्कृत के 'नाना पुराण निगमागम' का प्रभाव था दूसरी ओर उन्होंने ऐसी काव्य रचना का संकल्प लिया था जिससे 'सुरसरि सम सब कहँ हित होई'। इसी लोकमंगल भावना से प्रेरित हो, उन्होंने भाषा के सम्बन्ध में बड़ा व्यापक और उदार दृष्टिकोण अपनाया। उनके काव्य में संस्कृत की स्तुतियाँ परम्परा के लगाव की सूचक हैं, ब्रज आदि प्रमुख बोलियों में काव्य रचना उनकी लोक–हितैषणा

[1] तुलसी और जायसी की भाषा का तुलनात्मक अध्ययन, डॉ. लक्ष्मीनारायण मिश्र, पृष्ठ–42

Copyright @ 2020 Authors

ISSN: 2278-4632
Vol-10 Issue-10 No.02 October 2020

का प्रमाण है और विभिन्न बोलियों के अतिरिक्त अरबी–फारसी आदि विदेशी शब्दों का ग्रहण उनकी प्रगतिशीलता का परिचायक है।''[2]

तत्कालीन समय में मध्यकालीन सामंती समाज के सांस्कृतिक रूढ़िवाद और पतनशील मूल्य व्यवस्था के विरूद्ध मराठी, बँगला, उडिया आदि जनभाषाओं में व्यापक आंदोलन चल रहा था, तलसीदास भी उस आंदोलन का एक हिस्सा थे। डॉ. रामविलास शर्मा मानते हैं कि इस आंदोलन ने सामंती बंधनों की जकड़बंदी के बरक्स भक्त कवियों के लिए 'व्यक्तित्व की सापेक्ष मुक्ति' का द्वार उन्मुक्त कर दिया। तुलसीदास के लिए काव्य पांण्डिव्य प्रदर्शन नहीं भावाभिव्यक्ति का माध्यम था इसी लिए उन्होंने दोहावली में लिखा–

''का भाषा, का संस्कृत, प्रेम चाहिए सांच।
काम जु आवे कामरी, का ले करै कुमांच।।''

उपयुक्त दोहे में 'कुमांच' (रेशमीवस्त्र) संस्कृत का और 'कामरी' जन भाषा का प्रतीक है। तुलसीदास जी संस्कृत को 'कुमांच' की भाँति बहुमूल्य और कीमती तो मानते हैं किन्तु सहज, स्वाभाविक अभिव्यक्ति के लिए 'कामरी' को ही अपनाना पसंद करते हैं। चूँकि काव्य का प्रथम एवं प्रधान माध्यम भाषा है इसीलिए तुलसी ने सजीवता और प्रवाह के लिए जनभाषा को ही चुना।

भाषा की वास्तविक शक्ति शब्द और अर्थ होते हैं। इन दोनों के पारस्परिक सम्बन्ध के विषय में तुलसी ने लिखा है–

''गिरा–अरथ, जल–बीचि सम कहियत भिन्न न भिन्न।
बंदऊ सीताराम पद जिनहिं परम प्रिय खिन्न।।''

अर्थात जिस प्रकार सीता–राम, जल–लहर अभिन्न हैं उसी प्रकार वाणी (गिरा) और अर्थ अभिन्न हैं।

अपनी रचनाओं में प्रयुक्त भाषा के सम्बन्ध में 'भाषा भनिति मोरि मति थोरी', 'भदिति भदेस वस्तु बल बरनी', 'गिरा ग्राम्य सिय राम जस' उक्तियों में भाषा, भनिति, भदेस, गिरा, ग्राम्य आदि से स्पष्ट अभिप्राय लोकभाषा से ही है। लोकभाषा में 'मानस' की रचना करते समय उन्होंने अपनी भाषा विषयक मान्यता स्पष्ट कर दी–

[2] तुलसी और जायसी की भाषा का तुलनात्मक अध्ययन, डॉ. लक्ष्मीनारायण मिश्र, पृष्ठ–42

Copyright @ 2020 Authors

ISSN: 2278-4632
Vol-10 Issue-10 No.02 October 2020

'का भाषा का संस्कृत प्रेम चाहिए साँच'

आचार्य शुक्ल ने तुलसी की भाषा पर विचार करते हुए लिखा है– भाषा पर जैसा अधिकार गोस्वामी जी को था वैसा और किसी हिन्दी कवि का नहीं। पहली बात तो यह ध्यान देने की है कि 'अवधी' और 'ब्रज' काव्य की भाषा थी दोनों शाखाओं पर उनका समान और पूर्ण अधिकार था। 'रामचरित मानस' को उन्होंने अवधी में लिखा है जिसमें पूरवी और पछांही (अवधी) दोनों का मेल है। 'कवितावली', 'विनयपत्रिका' और 'गीतावली' तीनों की भाषा ब्रज है। 'कवितावली' तो ब्रज की चलती भाषा का एक सुंदर नमूना है। 'पार्वती–मंगल', 'जानकी–मंगल' और 'रामललान्हछू' तीनों पूरवी अवधी में हैं। भाषा पर विस्तृत अधिकार और किस कवि का था? न सूर अवधी लिख सकते थे, न जायसी ब्रज।''[3] आचार्य शुक्ल के इस कथन को कुछ विद्वानों ने नकार दिया। वे मानते हैं कि तूलसी की भाषा में विविधता तो है किन्तु वैविध्य उत्कृष्टता का प्रमाण नहीं है। वे यह भी मानते है कि तुलसी की भाषा में काव्य–गुण हैं, काव्य भाषा का स्वरूप भी सुरक्षित है, साहित्यक भी है। उनकी दृष्टि में काव्य भाषा के रूप में तुलसी ने ब्रज में कुछ वैसा नहीं किया जो उनके पूर्ववर्ती सूर ने और परवर्ती बिहारी ने किया था। 'गीतावली', कवितावली' और 'विनयपत्रिका' की भाषा ब्रज होते हुए भी अवधी से रंजित है।

'रामचरितमानस', 'बरवै रामायण' और 'रामललानहछू' की भाषा अवधी है। अवधी के प्रयोग की दृष्टि से तुलसी ने इस भाषा को बहुत समृद्ध और परिष्कृत किया है, जन–जन के रसास्वादन के योग्य बनाया है। सबसे महत्वपूर्ण बात यह है कि संस्कृत की पदावली को अवधी के व्याकरण के नियमों में निबद्ध कर प्रयुक्त किया है। 'मानस' में ऐसे कई स्थल मिल जाँएगें जहाँ उन्मुक्त गगन के पंछी के समान ठेठ अवधी का प्रयोग बरबस मन को मोह लेता है। जैसे–

''अंगरी पहिरि कूंडि सिर धरहीं। फरसा बांस सेल समकरहीं
देखि निषादनाथ भल टोलू। कहेड बजाउ जुझाऊ ढोलू।''

तुलसी ने काव्य में ताज़ा शब्दावली, मुहावरे और लोकोक्तियों का सुन्दर प्रयोग किया है। ऐसा प्रतीत होता है मानो तुलसी का लोक संचित अनुभव काव्य में निबद्ध हो गया हो। जैसे दासी मंथरा के इन कथनों में 'ठकुर सुहाती' आदि मुहावरों का सुन्दर प्रयोग है।–

[3]गोस्वामी तुलसीदास, आचार्य रामचन्द्र शुक्ल, पृष्ठ–107

Copyright @ 2020 Authors

ISSN: 2278-4632
Vol-10 Issue-10 No.02 October 2020

''हमहुँ कहवि अब ठकुर सोहाती। नाहित मौन रहब दिनु राती
कोऊ नृप होउ हमहिं का हानी। चेरि छाँड़ि अब होब कि रानी''

तुलसी समन्वयवादी कवि हैं और उनकी यह प्रवृत्ति काव्य–भाषा के प्रयोग में भी दृष्टिगत होती है। उन्होंने मुक्तभाव से दूसरी बोलियों और भाषाओं से शब्द ग्रहण किए हैं। उनकी सारग्राहिणी प्रवृत्ति ने न केवल हिन्दी की अन्य बोलियों–ब्रज, भोजपुरी, मैथिली–बुन्देखण्डी आदि शब्दों को अपनाया है अपितु विदेशी भाषाओं अरबी–फ़ारसी के शब्दों को भी ग्रहण किया है। अरबी–फ़ारसी तत्कालीन राजभाषा थी और तुलसी ने इस भाषा का प्रयोग अन्य भक्तिकालीन कवियों की अपेक्षा सर्वाधिक किया है जैसे– गुनाह, बकसीस, सिरताज, गरीबनिवाज, साहब, हुनर, निहाल, गरूर, गुमान, रहम, फ़हम, सहय, गुलाम, दरिया, दगाबाज आदि। विदेशी शब्दों के प्रयोग में तुलसी ने इस बात का विशेष रूप से ध्यान रखा है कि जनसाधारण में घुले–मिले शब्दों का ही प्रयोग हो। विदेशी शब्दों को हिन्दी या संस्कृत के उपसर्ग प्रत्यय लगाकर उन्हें स्वदेशी बना दिया है। जैसे–

''नीचऊ निवाजे प्रीति रीति की प्रबीनता
एही दरबार है गरब त सरब हानि
लाभ जोग छेम की गरीब मिसकीनता।

शब्दशक्तियाँ– काव्य में शब्दार्थ के बोध व्यापार का नाम शब्द – शक्ति है। अभिधा, लक्षणा, व्यंजना ये तीन प्रमुख भेद है। तुलसी ने अभिधा का प्रयोग सर्वत्र किया है। लक्षणाशक्ति के अनतर्गत रूढ़ि लक्षणा में परम्परागत कहवतों एवं मुहावरों का प्रयोग किया गया है। तुलसी काव्य रूढ़िलक्षणा से ओत प्रोत है–

1. मारग मारि महीसुर मारि कुमारग कोटिक हौ धन लीयो।
2. संकर कोप सों पाप को दाम परीच्छित जाहि गो जारि कै हीयो।
3. कासी में कंटक ज`ले भये तेजे पाइ अछाइ के आपनो कीयो,
4. आजुकि काल्कि परौ कि नरौ जड़ जाहि गे चारिदिवारी की दीयो।
5. मुँह लाये मूड़हि चढ़ी अन्तहु अहिरिनितु सूधी करियाई।
6. करत गगन को गेडुआ, सो सठ तुलसीदास।

Copyright @ 2020 Authors

ISSN: 2278-4632
Vol-10 Issue-10 No.02 October 2020

उपर्युक्त उदाहरणों में मार्ग का मारना, हिय को जलाना, कासी में कंटक, दीवारी का दिवा चाटना मुँह लगे को मूंड चढ़ाना तथा गगन को गेडुवा करना प्रयोग अभिधार्थ में अस्वाभाविक प्रतीत होते हैं किन्तु रूढ़िगत लक्ष्यार्थ के अनुसार मार्ग को नष्ट करना, हृदय को कष्ट देना, विरोधी लोगों को समप्त कर देना, ढिलाई से अनुचित लाभ उठाने का भी अवसर देना तथा अभिनव एवं अस्वाभाविक व्यापार का प्रयत्न आदि अर्थ का बोध कराते है।

प्रयोजनवती गौणी लक्षणा के मूल में सादृश्य सम्बन्ध कार्य करता है तथा प्रयोजनवती शुद्धा लक्षणा के मूल में सादृश्य सम्बन्ध से इतर गुणादि लक्ष्यार्थ का बोध होता है। गौणी लक्षणा के मूल में रूपक, उपमा, उत्प्रेक्षा, दीपक, तुल्ययोगिता, प्रतीप, व्यतिरेक, दृष्टान्त आदि सादृश्यमूलक अलंकार निहित होते हैं। तुलसी के काव्य में लक्षणा के इन दोनों भेदों का प्रचुर मात्रा में प्रयोग हुआ है। जैसे प्रयोजनवती गौणी लक्षणा का उदाहरण है–

''नवकंज, लोचन कंज मुखकर, कंजपद कंजारूणं

नील सरोरूह नी मनिउ नील नीरधर श्याम।''

उपर्युक्त उदाहरण में लोचन, मुख, कर तथा पद के लिए कंज का सादृश्य विधान है जो गुण और वर्ण की समानता के लिए एकदम सटीक है। भगवान राम के श्यामल तन की व्यंजना के लिए नीलकमल, नीलमणि और नीले बादल की उपमा भी अत्यन्त समीचीन है।

जब अभिधा और लक्षणा अपना कार्य समाप्त कर देती है वहाँ जिस अन्य शक्ति से अर्थ की प्राप्ति होती है। वह व्यंजना शब्द–शक्ति कहलाती है। व्यंजना शब्दशक्ति के दो मुख्य भेद हैं शाब्दी व्यंजना और आर्थी व्यंजना। शाब्दी व्यंजना शब्द विरोध पर आधारित होती है जैसे–

''सोइ राम कामरि प्रिय अवधपति, सर्वदा।

दास तुलसी त्रास निधि बहित्र'',

इस उदाहरण में 'राम' शब्द के परशुराम, बलराम, रामचन्द्र आदि कई अर्थ हो सकते हैं किन्तु 'कामरि' 'प्रिय' तथा अवधपति विशेषणों के संयोग के कारण यहाँ रामचन्द्र अर्थ ही अभिप्रेत होगा। इसी प्रकार निम्नलिखित उदाहरण में प्रयुक्त 'हरि' शब्द के सूर्य–सिंह आदि अनेकार्थ हो सकते हैं

Copyright @ 2020 Authors

ISSN: 2278-4632
Vol-10 Issue-10 No.02 October 2020

किन्तु इन्द्रीजीत– शब्द के प्रयोग से यह स्पष्ट हो जाता है कि यहाँ 'हरि शब्द से अभिप्राय भगवान विष्णु से है–

अति अन्नय गति इन्द्री जीता

जाको हरि बिनु कतहुँ न चीता।''

आर्थी व्यंजना में व्यंग्यार्थ किसी शब्द विशेष पर नहीं अपितु अर्थ पर आधारित होता है। इस शब्द शक्ति में वक्ता, देशकाल, काकु, चेष्टा प्रकरण आदि की विशेषता के कारण व्यंग्यार्थ की प्रतीति होती है। निम्नलिखित उदाहरण में 'वक्तृ वैशिष्ट्योत्पन्न लक्ष्य संभवा' आर्थी व्यंजना है–

ससि तै सीतल मो को लागौ भाई री तरनि

माके उए वरति अधिक अंग अंग दव

वाके उए मिटति रजनि जनित जरनि

गोपियाँ कहती हैं कि चन्द्रमा शीतल नहीं है क्योंकि चन्द्रमा के उदय होने पर उसके अंग–अंग में विरह की दावाग्नि जलने लगती है और सूर्य के उदय होने पर रात्रि में उत्पन्न जलन मिट जाती है। इस उदाहरण में चन्द्रमा से जलन तथा सूर्य से शीतलता मिलने का अभिधार्थ है। लक्ष्यार्थ है कि विरहिणाी गोपी को चन्द्र दर्शन असह्य है। व्यंग्यार्थ यह है कि विरहिणी अपने विरह ताप को उद्दीप्त करने वाली वस्तुओं से पीड़ित है। एक और उदाहरण देखा जा सकता है–

मैं सुकुमारि, नाथ बन जोगू।

तुमहि उचित तप, मो कहँ भोगू

इसका अभिधार्थ है कि सीता कह रही हैं कि मै सुकुमारि हूँ वन में रहकर तप करने योग्य नहीं हूँ, हे स्वामी! आप संन्यासी बनकर तपस्या करें। लक्ष्यार्थ है कि श्रीराम ने सीता को सुकुमारी बताकर अपने साथ वन ले जाने से मना कर दिया था। अतः सीता कहती हैं कि यदि मैं राजकुमारी, सुकुमारी हूँ तो आप भी तो राजकुमार और सुकुमार हैं। यदि आप वन में रहकर तपस्या करने के योग्य हैं तो मैं भी हूँ। व्यंग्यार्थ है कि मेरे लिए भोग का अवसर आपके साथ है चाहे वह राजमहल हो या वनप्रदेश। यह 'काकु वैशिष्ट्योत्पन्न वाच्य सम्भवा व्यंजना' है जिसके मूल में वक्रोक्ति अलंकार भी होता है

Copyright @ 2020 Authors

ISSN: 2278-4632
Vol-10 Issue-10 No.02 October 2020

काव्य–गुण–रीति– गुण रस के धर्म होते हैं जिनकी स्थिति अचल है तथा रीति और अलंकार की भाँति ये साहित्य को उत्कृष्ट बनाते हैं। प्रमुख तीन गुण हैं– माधुर्य, ओज, प्रसाद। प्रमुख तीन रीतियाँ है– वैदर्भी, गौड़ी पांचाली।

1. माधुर्य गुण और वैदर्भी रीति – इस गुण–रीति के उत्कर्ष में ट, ठ, ड, ढ़, ढ को छोड़कर अन्य वर्णों का प्रयोग होता है। शब्द लघु होते हैं, समस्त पद का अभाव होता है, कोमल और मधुर शब्दावली का प्रयोग होता है जैसे– श्रृंगार और वात्सल्य रस में इनका प्रयोग होता है।

क. सरद चन्द निंदक मुख नीके। नीरज नयन भावते जीके
चितवन चारू मार मद हरनी। भावति ह्दय जाति नहिं बरनी

ख. साथ निसि नाथ मुखी, पालनाथ नन्दिनी सी।
तुलसी बिलोकि चित लाइ लेत संता है।
आनन्द उमंग मन जोबन उमंग तन,
रूप की उमंग उमगत अंग अंग है।''
उमगत अंग अंग है।''

2. ओजगुण और गौड़ी रीति – इसकी भाषा द्वित्य, संयुक्त वर्ण युक्त और ट, ठ, ड, ढ आदि कर्कश वर्णों का प्रयोग अधिक होता है। वीर रस, भयानक रस की व्यंजना में इनका प्रयोग होता है। 'रामचरितमानस' और 'कवितावली' के 'सुन्दरकाण्ड और लंकाकाण्ड में इनका बहुल प्रयोग है–
मतभट मुकुट दसकंध साहस सइल–सृंग विधुर निजनु वज्रटांकी।
बिसट चटकन चपट चरनगहि पटक मनि निधरि गए सुभट सत सबकां छूट्यो।''

3. प्रसाद गुण और पांचाली रीति – जिस काव्य के श्रवण मात्र से ही अर्थ–बोध हो जाए वहाँ प्रसाद गुण और पांचाली रीति होती है। सामासिक शब्दों का अभाव, कटु वर्णों का प्रयोग कम और सुकुमार, कोमल पदावली का प्रयोग हाता है। जैसे–

''सोह नवल तन सुंदर सारी। जगत जननि अतुलित छवि भारी
कीरति भनिति भूति भलि सोई। सुरसरि सम सब कहँ हित होई।''

Copyright @ 2020 Authors

ISSN: 2278-4632
Vol-10 Issue-10 No.02 October 2020

छन्द – योजना – सभी भक्तिकालीन कवियों ने छन्दोबद्ध साहित्य की रचना की है। भाषा की भाँति तुलसी ने छंद को भी काव्य का अवाश्पक उपकरण माना है। 'मानस' के मंगलाचरण में उन्होंने 'वर्णानां अर्थ संघाटना रसानाम' के साथ 'छन्दसामपि' का उल्लेख कर छंद को काव्य का अनिवार्य अंग माना है। 'मानस के संदर्भ में काव्य के अन्यान्य बाह्य उपकरणों पर विचार करते हुए भाषा और अलंकरण के साथ 'छंद – प्रबन्ध' का भी उल्लेख किया–

'आरवर अरथ अलंकृति नाना। छंद प्रबन्ध अनेक विधान।'' आरवर (अक्षर, शब्द और अर्थ तो भाषा के संदर्भ में है, 'अलंकृति नाना' से अभिप्राय काव्य के बाहरी उपकरण है। तुलसी ने काव्य–रूपी सरोवर में छंद की महत्ता स्थापित करते हुए लिखा है–

'छंद' सोरठा सुन्दर दोहा। सोइ बहुरंग कमल कुल सोहा।

पुरइन सघन चारू चौपाई जुगुति मंजु मनि सीप सुहाई।

मानस रूपी सरोवर में सवैये धनाक्षरी आदि सोरठा और दोहा को विभिन्न रंगो का कमल और चौपाई को कमल–पत्र (पुरइन) मानकर काव्य के प्रसाधनों में छंद की महत्ता को स्थापित किया है। तुलसीदास ने इस तथ्य की ओर भी संकेत किया है कि छंदो का प्रयोग काव्य–रूप, विषय तथा भाव के अनुकूल होना चाहिए।

तुलसी ने उस गुण में प्रचलित सभी काव्य–पद्धतियों और छंदो को अपनाया था। आचार्य हजारी प्रमाद द्विवेदी लिखते हैं– ''चन्द के छप्पद, कुण्डलियाँ, कबीर के दोहे और पद, सूर और विद्यापति का लीलागान विषयक भाव प्रधान नीति पद्धति, जायसी, ईश्वरदास आदि की दोहा चौपाई शैली, गंग आदि भाट कवियों की सवैया, कवित्त की पद्धति, रहीम के बरवै सबको उन्होंने उपनी अद्भुत ग्राहिका शक्ति द्वारा आत्मसात कर लिया। उस समय पूर्व भारत में अनेक प्रकार के मंगल काव्य प्रचलित थे। तुलसीदास ने इस शैली को भी अपनाया। उन्होंने 'पार्वती मंगल– और 'जानकी मंगल' नाम के काव्य लिखें थे। इस प्रकार उन दिनों साधारण जनता में प्रचलित सोहर नहछू गीत, चांचर, केली, बसन्त आदि रागों में भी उन्होंने काव्य लिखे।''[4]

तुलसी की साहित्यिक जीवन–यात्रा पर दृष्टिपात करने से पता चलता है कि वे 'रामचरितमानस' की रचना से पहले 'रामलला नहछू' और 'जानकी–मंगल' में अवधी के प्रचलित

[4] हिन्दी साहित्य का उद्भव और विकास–आचार्य हजारी प्रसाद द्विवेदी

Copyright @ 2020 Authors

ISSN: 2278-4632
Vol-10 Issue-10 No.02 October 2020

सोहर छंद का उपयोग कर रहे थे। दूसरी ओर अपभ्रंश की परम्परा में प्रचलित छंद दोहा और चौपाई में 'रामज्ञा प्रश्न' और 'वैराग्य संदीपनी' की भी रचना कर रहे थे। उन्होंने वाल्मीकि, व्यास से लेकर भवभूति तक उपयोग में लाए गए अनुष्टुप, इन्द्रवज्रा, त्रोटक, भुजंग प्रयात, वृत्त, मालिनी, वसंत लतिका वृत्त, शार्दूलविक्रीड़ित, वंशस्थविलय आदि छंदो का प्रयोग कर अपनी रचनात्मक प्रतिभा को सोदाहरण प्रस्तुत करने हुए यह सिद्ध किया कि वे संस्कृत छंदो और संस्कृत भाषा पर भी अपना समझते हैं।

'रामचरितमानस' के संस्कृत श्लोकों को छोड़कर शेष सम्पूर्ण महा काव्य में दोहा–चौपाई और सोरठा छंद का ही प्रयोग है। यद्यपि भावधारा, सर्गानुसार और लय–गति–तान बनाए रखने के लिए हरिगीतिका, तोमर, अरिल्ल, त्रिभंगी आदि छंदो के उदाहरण भी मिल जाते हैं। रासो काव्य और जायसी के 'पदमावत' की कड़वक शैली का प्रभाव भी 'मानस' पर है। इस सम्बन्ध में डॉ. दीनानाथ शुक्ल का मत उल्लेखनीय है– ''मानस में भी हमें संस्कृत काव्यों की सर्ग निबद्धता का नहीं प्रत्युत कड़वक योजना का ही प्रभाव स्पष्ट रूप में दिखाई पड़ता है। इन कड़वकों में उपलब्ध होने वाली अर्द्धालियों की संख्या के लिए कोई निश्चित नियम न तो अपभ्रंश के महाकाव्यों में ही पाया जाता है और न 'रामचरितमानस' में ही। 'पउमचरिउ' की बारहवीं संधि में ही हमें कहीं आठ अर्द्धालियों का कड़वक दिखाई देता है तो कही नौ का। मानस में भी आठ अर्द्धालियों से लेकर सोलह तक के कड़वक देखने को मिलते हैं।''[5]

तुलसीदास की अन्य प्रमुख कृतियों में 'कवितावली' और 'हनुमान बाहुक' में कवित्त और सवैया छंद का प्रयोग है। 'रामाज्ञा–प्रश्न' और दोहावली में दोहा छंद है। 'पावती मंगल', जानकी मंगल में मंगल सोहर और हरिगीतिका छंद का प्रयोग है। 'विनयपत्रिका', 'गीतावली' और 'कृष्णगीतावली' में पद और प्रगीत का प्रयोग है। ये प्रगीत और मुक्तक कल्याण, गौरी, असावरी, भैरवी, केदारी, घनाश्री, मल्हार, रामकली, टोड़ी, मारू, विलावल आदि रागों में निबद्ध हैं। तुलसीदास ने स्वामी हरिदास की संगीत–गायन शैली से प्रेरणा पाते हुए, ब्रजभाषा की सूर की प्रगीतात्मकता का विकास करते हुए प्रगीत शैली को ऊँचाइयों तक पहुँचाया।

तानसेन, बैजू, स्वामी हरिदास भारतीय संगीत परम्परा का परिष्कार कर रहे थे, तुलसीदास भी उसे नया रूप देने में लगे थे। हिन्दुस्तानी संगीत की परम्परा के विकास में हिन्दू और मुस्लिम

[5] चरित काव्यकी परम्परा और रामचरित मानस, डॉ. दीनानाथ शुक्ल, पृष्ठ–286

Copyright @ 2020 Authors

ISSN: 2278-4632
Vol-10 Issue-10 No.02 October 2020

संगीतकार अपनापूर्ण योगदान दे रहे थे। बारहवीं–तेहरवीं शदाब्दी से लेकर सत्रहवीं सदी तक संतो, सूफियों और भक्तों के पदों की गायन परम्परा पर संगीत की गहरी छाप है। वस्तुतः यह परम्परा केवल ब्रजभाषा में नहीं अपितु मैथिली, अवधी, खड़ी–बोली, पंजाबी, मराठी, बँगला में भी चल रही थी। ''दक्षिण की शास्त्रीय पद्धति के गायक त्यागराज और पुरंदरदास के पद गाते हैं, उत्तर की शास्त्रीय पद्धति के गायक सूर, तुलसी और मीरा के पद गाते हैं।''[6]

डॉ. रमेशकुन्तल मेघ तुलसी की सभी कृतियों के कथागायन स्वरूप पर चित्रकूट के परिवेश का प्रभाव मानते हैं। उनके अनुसार–''चूकि चित्रकूट राम की उपासना में वृंदावन की तरह है, अतः कीर्तनियों की भिन्न–भिन्न मंडलियों द्वारा राम के भजन और राम के लीलागान की परम्परा आज तक चली आ रही है। कहना न होग कि गोस्वामी जी के जीवन के इस वृत्त में चित्रकूट के सम्पर्क ने तुलसी के सृजनकार्य तथा कवित्त को गढ़ा है।[7]

उक्त शास्त्रीय और लोकप्रचलित छंदो के साथ ही 'बरवै' जैसे अप्रचलित छंद में 'बरवै रामायण' की रचना करके तुलसी ने अपनी अगाध छंद–प्रतिमा का भी परिचय दिया है। तुलसीदास ने एक ही भाव को भिन्न–भिन्न छंदो में व्यक्त कर उसे नवीन–आकर्षक और प्रभावोत्पादक भी बना दिया है।

संदर्भ ग्रन्थः

1. तुलसी ग्रन्थावली– संपादक–रामचन्द्र शुक्ल, भगवानदीन, ब्रजरत्नदास
   नागरी प्रचारिणी सभा, काशी

2. गोस्वामी तुलसीदास – रामचन्द्र शुक्ल
   काशी नागरी प्रचारिणी सभा
   प्रकाशक–इंडियन प्रैस लिमिटेड प्रयाग–1935

[6] भारतीय साहित्य की भूमिका, डॉ. रामविलास शर्मा, पृष्ठ–190
[7] तुलसी–आधुनिक वातायान से, रमेश कुन्तल मेघ, पृष्ठ–154

Copyright @ 2020 Authors